बौद्धतन्त्र [वज्रयान] की समीक्षा

प्रो. पी. जी. योगी

मानव सभ्यता के उदय के साथ-साथ मन्त्र-तन्त्र का उदय होता है। अतः उनकी प्राचीनता उतनी ही अधिक है जितनी मानव संस्कृति की। इस विशाल विश्व में जगन्नियन्ता की अद्‌भुत शक्तियाँ क्रियाशील हैं। भिन्न-भिन्न देवता उसी शक्ति के प्रतीक मात्र हैं। जगद् व्यापार में इन शक्तियों का उपयोग नाना प्रकार से है। इन्हीं देवताओं की अनुकम्पा प्राप्त करने के लिए मन्त्र का उपयोग है। जिस फल की उपलब्धि के लिए मनुष्य को अश्रान्त परिश्रम करना पडता है, वही फल दैवी कृपा से अल्प प्रयास में ही सुलभ हो जाता है। मनुष्य सदा से ही सिद्धि पाने के लिए किसी सरल मार्ग की खोज में लगा रहाता हैं। उसे विश्वास है कि कुछ ऐसे सरल उपाय हैं जिनकी सहायता से दैवी शक्तियो को अपने वश में रखकर अपना भौतिक कल्याण तथा पारलौकिक सुख सम्पादन किया जा सकता है। मन्त्र-तन्त्रों का प्रयोग ऐसा ही सरल मार्ग है। यह बात केवल भारतवर्ष के लिए चरितार्थ नहीं होती, प्रत्युत अन्य देशों में भी प्राचीन काल में इस विषय की पर्याप्त चर्चा थी। भारत में तन्त्र के अध्ययन और अध्यापन की ओर प्राचीन काल से विद्वानों की दृष्टि आकृष्ट रही है। यह विषय नितान्त रहस्य पूर्ण है। मन्त्र-तन्त्र की शिक्षा योग्य गुरू के द्वारा उपयुक्त शिष्य को दी जा सकती है। इसके गुप्त रखने का उद्देश्य यही है कि। सर्वसाधारण जो इसके रहस्य से अनभिज्ञ हों इसका प्रयोग न करें, अन्यथा लाभ की अपेक्षा हानि होने की ही अधिक सम्भावना है।

तान्त्रिक साधना नितान्त रहस्यपूर्ण है। अनधिकारी को इसका रहस्य नहीं बतलाया जा सकता। शिक्षित लोगों में भी तन्त्र के विषय में अनेक धारणायें फैली हुई है। तन्त्रों की उदात्त भावनायें तथा विशुद्ध आचार पद्धति के अज्ञान का ही यह कुत्सित परिणाम है। तन्त्र शब्द की व्युत्पत्ति तन्-धातु [विस्तार] - तनुविस्तारेसे ष्ट्रम प्रत्यय से हुई है। अतः इसका व्युत्पत्तिगम्य अर्थ है, वह शास्त्र जिसके द्वारा ज्ञान विस्तार किया जाता है। शैवसिद्धान्त के कार्मिक आगम में उन शास्त्रों को तन्त्र बतलाया गया है जो तन्त्र और मन्त्र से युक्त अनेक अर्थों का विस्तार करते हों तथा उस ज्ञान के द्वारा साधकों का त्राण करते हों। इस प्रकार तन्त्र का व्यापक अर्थ शास्त्र, सिद्धान्त, अनुष्ठान, विज्ञान आदि है। इसीलिये शङ्कराचार्य ने सांख्य को 'तन्त्र' नाम से अभिहित किया है। महा भारत में भी न्याय, धर्मशास्त्र, योगशास्त्र आदि के लिये तन्त्र का प्रयोग उपलब्ध होता है। देवता के स्वरूप, गुण, कर्म आदि का जिसमें चिन्तन किया गया हो, तद्विषयक मन्त्रों का उद्धार किया गया हो, उन मन्त्रों को यन्त्र में संयोजित कर देवता का ध्यान तथा उपासना के पाँचो अङ्ग पटल, पद्धति, कवच, सहस्र, नाम और स्तोत्र व्यवस्थित रूप से दिखलाये गये हों, उनग्रन्थों को 'तन्त्र' कहते हैं।

तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेनेति तन्त्रम्-काशिका।

वाराही-तन्त्र के अनुसारः- सृष्टि, प्रलय, देवतार्चन, सर्वसाधन, पुरश्चरण, षट्कर्मसाधन [शान्ति, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन, तथा मारण] और ध्यानयोग इन सातु लक्षणों से युक्त ग्रन्थों को आगम कहते हैं। तन्त्र का ही दुसरा नाम आगम है। सभ्यता और संस्कृति निगमागम-मूलक है। निगम से अभिप्राय वेद से है तथा आगम का अर्थ तन्त्र है। तन्त्र दो प्रकार के होते हैं। (क) वेदानुकूल तथा (ख) वेदवाह्य। कतिपय तन्त्रों तथा आचारों का मूल-स्रोत वेद से ही प्रवाहीत होता है। पञ्चरात्र तथा शैवागम के कतिपय सिद्धान्त वेदमूलक अवश्य है। तथापि प्राचीन ग्रन्थों में इन्हें वेद-वाह्य ही माना गया है। शाक्तों के सप्तविध आचारों में जनसाधारण केवल एक ही आचार वामाचार से परिचय रखता है और वह भी उसके तामसिक रूप से ही। सच्चे शाक्त की यही धारणा रहती है कि मैं स्वयं देवी हूँ, मैं अपने इष्टदेवता से भिन्न नहीं हूँ। मैं शोकहीन साक्षात् ब्रह्मरूप हूँ, नित्य, मुक्त तथा सच्चिदानन्दरूप मैं ही हूँ :-

अहंदेवी न चान्योऽस्मि, ब्रह्मैवाऽह नं शोकभाक्।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं, नित्यमुक्त स्वभाववान्।। [*कुलार्णवतन्त्र*]

शाक्तों की आध्यात्मिक कल्पना के अनुसार परब्रह्म, निष्कल, शिव, सर्वज्ञ, स्वज्योति, आद्यन्तविहीन निर्विकार, तथा सच्चिदानन्द स्वरूप है और जीव एवं जगत्, अग्नि स्फुल्लिङ्ग की भाँति उसी ब्रह्म से आविर्भूत हुए हैं। तन्त्रों के ये सिद्धान्त निःसन्देह उपनिषद्मूलक है। इसी प्रकार ऋग्वेद के वागाम्भृणी (रात्रीशुक्त) सूक्त [10।125] में जिस शक्ति तन्त्र का प्रतिपादन है, शाक्त-तन्त्र उसी के भाष्य माने जा सकते है। अतः तन्त्रों का वेदमूलक होना युक्ति-युक्त है। सच् तो यह है कि अत्यन्त- प्राचीनकाल से साधना की दो धारायें प्रवाहित होती चली आ रही है। एकधारा (वैदिकधारा) सर्वसाधारण के लिये प्रकट रूप से सिद्धान्तों का प्रतिपादन करती है और दूसरी धारा [तान्त्रिक-धारा] चुने हुए अधिकारीयों के लिये गुप्त साधना का उपदेश देती है। एक बाह्य है, तो दूसरी आभ्यान्तरिक, पहली प्रकट है तो दूसरी गुह्य। परन्तु दोनो धारायें प्रत्येक काल में साथसाथ विध्यमान रही है। इसीलिये जिसकाल में वैदिक-यज्ञ-यागों का बोलबाला था उस समय भी तान्त्रिक उपासना अज्ञात न थी तथा कालान्तरमें जब तान्त्रिक पूजा का विशेष प्रचलन हुआ उस समय भी वैदिक कर्मकाण्ड विस्मृति के गर्भ में विलीन नहीं हुआ। वैदिक तथा तान्त्रिक पूजा की समकालीनता का परिचय हमें उपनिषदों के अध्ययन से स्पष्ट मिलता है। उपनिषदों में विभिन्न विद्याओं की आधार-भित्ति तान्त्रिक प्रतीत होती है। बृहदारण्यक उपनिषद् [6।2] तथा छन्दोग्य उपनिषद् [5।8] में वर्णित पञ्चाग्नि विद्याके प्रसङ्ग में "येषां वाच गौतमाग्निः" आदि रूपक का यही स्वारस्य है। मधुविद्या का भी यही रहस्य है। "सूर्य की उर्ध्वमुख रश्मियाँ मधुनाडियाँ है, गृह्य आदेश मधुकर है, ब्रह्म ही पुष्प है, उससे निकलने वाले अमृत को साध्यनामक देवता लोग उपभोग करते हैं"। पञ्चम अमृत के इस वर्णन में जिन गृह्य आदेशों को मधुकार बतलाया गया है वे अवश्यमेव गोपनीय तान्त्रिक आदेशों से भिन्न नहीं है।

अतः वैदिक पूजा के संग में तान्त्रिक पद्धति के अस्तित्व की कल्पना करना कथमपि निराधार नहीं है। भारतीय तन्त्रों की उत्पत्ति भारत में ही हुई। साधना के रहस्य को जानने वाले विद्वानों के सामने इस विषय के विशेष स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है। तान्त्रिक मत साधकों की योग्यता के अनुरूप उपासना का नियम बतलाता है। शाक्त मत तीन भाव तथा सात आचार को अङ्गीकार करता है। भाव मानसिक अवस्था है और आचार है बाह्याचरण। पशुभाव, वीरभाव तथा दिव्याभाव ये तीन भाव हैं। वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार, तथा कौलाचार ये सात आचार पूर्वोक्त तीन भावों से सम्बद्ध है। जिन जीवों में अविद्या के आवरण के कारण अद्वैत ज्ञान का लेशमात्र भी उदय नहीं हुआ है, उनकि मानसिक प्रवृत्ति पशुभाव कहलाती है। क्यों कि पशु के समान ये भी अज्ञान रज्जुके द्वारा संसार से बँधे रहते हैं। जो मनुष्य अद्वैतज्ञानरूपी अमृत ह्रदकी कणिका का भी आस्वादन कर अज्ञान रज्जुके काटने में किसी अंश में समर्थ होता है, वह वीर कहलता है। इसके आगे बढनेवाला साधक दिव्य कहलाता है। दिव्याभाव की कसौटी है द्वैताभाव को दूर कर उपास्य देवता की सत्ता में अपनी सत्ता खो कर अद्वैतानन्द का आस्वादन करना। इन्हीं भावों के अनुसार आचारों की व्यवस्था है। प्रथमचार आचारः- वेद, वैष्णव, शैव तथा दक्षिण-पशुभाव के लियें हैं। वाम और सिद्धान्त वीर भाव के लिये और कौलाचार दिव्यभाव के साधन के लिये है। कौलाचार सब आचारों में श्रेष्ठ बतलाया जाता है। पक्का कौलमतावलम्बी वही है जिसे पङ्क तथा चन्दन में शत्रु तथा मित्र में श्मसान तथा भवन में, सोना तथा तृण में तनिक भी भेद बुद्धि नहीं रहती। ऐसी अद्वैतभावना रखना बहुत ही दुष्कर है। कौलों के विषय में यह लोक प्रसिद्ध उक्ति निन्दात्मक नहीं बल्कि वस्तुतः यथार्थ है:-

कदमे चन्दने ऽभिन्नं पुत्रे शत्रौ तथा प्रिये।
श्मशाने भवने देवि! तथैव काञ्चनेतृणे।।
न भेदो यस्य देवोशि! स कौलः परिकीर्तितः। [*भावचूडामणि तन्त्र*]
अन्तः शाकता बहिः शैवाः, सभामध्ये च वैष्णवाः।

नानारुपधराः कौलाः विचरन्ति महीतले।

कौल शब्द कुल शब्द से बना हुआ है। कुल का अर्थ कुण्डलिनी शक्ति तथा 'अकुल' का अर्थ शिव है। जो व्यक्ति योग विद्या के सहारे कुण्डलिनी का उत्थान कर सहस्त्रार में स्थित शिव के साथ संयोग करा देता है। उसे कौल या कुलीन कहते हैं। कुल कुण्डलिनी शक्ति ही कुलाचार का मूल आलम्बन है। कुण्डलिनी के साथ जो आचार किया जाता है उसे कुलाचार कहते हैं। यह आचार मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन इन पञ्च मकारों के सहयोग से अनुष्ठित होता है। इस पञ्च मकारों का अत्यन्त गुढ रहस्य है। इन पाँच तत्वों का सम्बन्ध अर्न्तयोग से है। ब्रह्मरन्ध्र में स्थित जो सहस्त्र कमल है उससे चूने वाला जो अमृत उसी का नाम मद्य है। साधक पुण्य और पापरुपी पशुओं को ज्ञानरुपी खड्ग से मारता है और चित्त को ब्रह्म में लीन करता है वही मांसाहारी है। आगमसार के अनुसार जो वाणी का संयम रखता है वही सच्चा मांसाहारी है। शरीर में स्थित इडा और पिङ्गला नाडियों को तान्त्रिक भाषा में गंगा और यमुना कहते है। इन के योग से सर्वदा प्रवाहित होनेवाले श्वास और प्रश्वास ही (दो) मत्स्य है। सत्संग के प्रभाव से मुक्ति होती है। असत्संगति के मुद्रण का ही नाम मुद्रा है। सुषुम्ना और प्राण के समागम को तान्त्रिक भाषा में मैथुन कहते हैं। इस प्रकार पंच मकार का आध्यात्मिक रहस्य बडा ही गम्भीर है। तान्त्रिक लोग कभी भी उच्छृङ्खल नहीं होते। वे जीवन में सदाचार को उतना ही महत्व देते हैं जितना अन्य लोग।

बुद्धधर्म में मन्त्र-तन्त्र का उदय किस काल में हुआ, एक समस्या है? त्रिपिटकों के अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि 'तथागत' की मूल शिक्षा में मन्त्र-तन्त्र के बीज अन्तर्निहित है। मानुष बुद्ध के पक्षपाती होने वाले भी स्थविर वादियों ने 'आटानाटीयसुत्त' नागों में इस प्रकार की अलौकिक बातों का प्रारम्भ कर दिया। 'बुद्ध' से ही तन्त्र-मन्त्र के प्रारम्भ में आचार्यों का दृढ विश्वास है। 'बुद्ध' को स्वयं इद्धियों [सिद्धियों] में पुरा विश्वास था उन्हों ने चार 'इद्धिपाद' छन्द (इच्छा), वीर्य (प्रयत्न), चित्त (विचार), तथा विमंसा (परीक्षा), का वर्णन किया है जो अलौकिक सिद्धियों को उत्पन्न करने में समर्थ थे। तत्वसंग्रह में शान्तरक्षित का स्पष्ट कथन है कि बुद्ध धर्म पारलौकिक कल्याण की उत्पत्ति में जितना सहायक है, उतना लौकिक कल्याण की उत्पत्ति में भी है। इसीलिये बुद्ध ने स्वयं मंन्त्र, धारणी आदितान्त्रिक विषयों की शिक्षा दी हैं, जिससे इसी लोक में प्रज्ञा, आरोग्य आदि वस्तुओं की उपलब्धि हो सकती है। इतना ही नहीं 'साधनमाला' जिसमें भिन्न भिन्न विद्वानों के द्वारा रचित देवता विषयक 312 'साधनों' का संग्रह है बतलाती है कि बहुत से मन्त्र स्वयं 'बुद्ध' से उत्पन्न हुए हैं। विभिन्न अवसरों पर देवताओं के अनेक मंन्त्र 'बुद्ध' ने अपने शिष्यों को बतलाये हैं। गुह्य समाज (5 शतक) की परीक्षा बतलाती है कि तन्त्र का उदय बुद्ध से ही हुआ। तथागत ने अपने अनुयायियों को उपदेश देते समय कहा है कि जब मैं दीपंकर और कश्यप बुद्ध के रूप में उत्पन्न हुआ था, तब मैं ने तान्त्रिक शिक्षा इसलिए नहीं दी कि मेरे श्रोताओं में उन शिक्षाओं को ग्रहण करने की योग्यता न थी।

'विनयपिटक' की दो कथाओं में अलौकिक सिद्धियों के प्रदर्शन का मनोरञ्जक वृत्त वर्णित है। राजगृह के एक सेठ ने चन्दन का बना हुआ भिक्षापात्र बहुत ही उचाई पर किसी बाँस के सिरे पर बाधँ दिया। अनेक तीर्थङ्कर आये पर उसे उतारने में समर्थ नहीं हुए। तब भरद्वाज अपनी योग सिद्धि के बल पर आकाश में उपर उठ गये और उसे लेकर ऊपर ही ऊपर राजगृह की तीन बार प्रदक्षिणा की। जनता के आश्चर्य की सीमा न थी, पर बुद्ध को एक तुच्छ काठ के पात्र के लिए इतनी शक्ति का प्रयोग नितान्त अनुचित जँचा और उन्हों ने भरद्वाजकी इसके लिए भर्त्सना की और काष्ठपात्र का प्रयोग दुष्कृत नियत किया। मगधनरेश सेनिय बिम्बसार के द्वारा पुरस्कृत 'मेण्डक' नामक गृहस्थके परिवार की सिद्धियों का वर्णन विनयपिटक में मिलता है। इससे निष्कर्ष यही निकलाता है कि तन्त्र-मन्त्र, योग, सिद्धि आदि की शिक्षा स्वयं बुद्ध से उद्भूत हुई थी। वह प्रथमतः बीजरूप में थी, अनन्तर उसका विकास हुआ। *तिब्बति जम्फल चाजू*।

. 'मञ्जुश्रीमूलकल्प' की रचना प्रथम तथा द्वितीय शतक विक्रमी में हुई। इस समय में मन्त्र-तन्त्र-धारणी आदि का वर्णन विशेषतः मिलता है। अतः महायान के समय में मन्त्र-तन्त्र की भावना नष्ट नहीं हुई थी, प्रत्युत यह बडे जोरों से अपनी अभिव्यक्ति पाने के लिए अग्रसर हो रही थी। महायान के इस विकास का नाम 'मन्त्रयान' है जिस का अग्रिम विकास 'वज्रयान' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। दोनों में अन्तर केवल मात्रा [डिग्री] का है। सौम्य अवस्था का नाम 'मंन्त्रयान' है, उग्ररुप की संज्ञा 'वज्रयान' है। योगाचार से लोगों को सन्तुष्टि कुछ काल तक हुई परन्तु विज्ञानवाद के गहन सिद्धान्तो के भीतर प्रवेश करने की योग्यता साधारण जन में न थी। वह ऐसी मनोरम धर्म के लिए लालायित थी जिसमें अल्प प्रयत्न से महान सुख मिलने की आशा दिखाई गई होती।

इस मनोरम धर्म का नाम 'वज्रयान' है। इस सम्प्रदाय ने 'शून्यता' के साथ-साथ 'महासुख' की कल्पना सम्मिलित कर दी है। 'शून्यता' का ही नाम 'वज्र' है। वज्र कभी नष्ट नहीं होता है, वह दुर्भेध्य अस्त्र है। वज्र दृढ़सार, अपरिवर्तनशील, अच्छेध्य, अभेध्य, न जलने, योग्य, अविनाशी है। अतः वह शून्यता का प्रतीक है। यह शून्य 'निरात्मा' है वह देवीरूप है, जिसके गाढ आलिङ्गन में मानव चित्त [बोधिचित्त या विज्ञान] सदा बद्ध रहता है तथा यह युगल मिलन सब काल के लिए सुख तथा आनन्द उत्पन्न करता है। अतः वज्रयान ने शुन्य-विज्ञान तथा महासुख की त्रिवेणी का संगम बन कर असंख्य जीवो के कल्याण का मार्ग उन्मुक्त किया है।

वज्रयान का उद्गमस्थान कहाँ था? यह विचारणीय विषय है। तिब्बती परम्परा में कहा है कि बुद्ध ने बोधि के प्रथम वर्ष में ऋषिपत्तन में, श्रामन्य धर्म का चक्रप्रवर्तन किया, 13 वें वर्ष में राजगृह के गृधमूट पर्वत पर महायान धर्म प्रज्ञापारमिता का चक्रप्रवर्तन किया और 16 वें वर्ष में मन्त्रयान का तृतीय धर्म चक्र प्रवर्तन श्री धान्य कटक में किया। धान्यकटक गुन्टूर जिले में धरनी कोट के नाम से प्रसिद्ध है। वज्रयान का जन्मस्थान धरणीकोट तथा श्री पर्वत है जिसकी ख्याति तन्त्र शास्त्र के इतिहास में अत्यन्त अधिक है। भवभूति ने मालतीमाधव संस्कृत नाटक में श्रीपर्वत को तान्त्रिक उपासना का केन्द्र के रूप में वर्णित किया है। जहाँ बौद्ध भिक्षुणी कपाल कुण्डला तान्त्रिक साधना में निरत रहती थी। सप्तम शतक में बाणभट्ट श्रीपर्वत के माहात्म्य से भलीभाँति परिचित थे। श्री हर्षवर्धन ने रत्नावली नाटक में श्री पर्वत से आनेवाले एक सिद्ध का वर्णन किया है। शङ्कर दिग्विजय में श्रीशैल को तान्त्रिकों का केन्द्र माना है। प्रसिद्धि है कि आचार्य नागार्जून ने श्रीपर्वत पर रहकर अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त की थी । इन समस्त समीक्षा हमें इस परिणाम पर पहुँचाती है कि श्रीपर्वत तान्त्रिक उपासना का प्रधान केन्द्र था। श्रीपर्वत में ही मन्त्रयान तथा वज्रयान का उदय हुआ, इसका प्रमाण तिब्बती तथा सिंहली ग्रन्थों से भलीभाँति चलता है । 14 वीं शताब्दी के 'निकायसंग्रह' नामक ग्रन्थ में वज्रयान को वज्रपर्वतवासी निकाय बतलाया गया है। इस ग्रन्थ में इस निकाय को चक्रसंवर, वज्रामृत, द्वादशचक्र आदि, वे समस्त ग्रन्थ वज्रयान के ही हैं। अतः सम्भवतः श्रीपर्वत को ही वज्रयान से सम्बद्ध होने के कारण 'वज्रपर्वत' के नाम से पुकारते हों, कुछ भी हो तिब्बती सम्प्रदाय धान्यकटक में वज्रयान का चक्रप्रर्वतन स्वीकार करता है। धान्यकटक तथा श्रीपर्वत दोनो ही माद्रास के गुण्टर जिले में विद्यमान हैं। यही पर वज्रयान की उत्पत्ति मानना न्यायसंगत है।

वज्रयान कि उत्पत्ति किस समय में हुई? इसका निर्णय अभी तक नहीं हो सका है। इसका अभ्युदय आठवीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है जब सिद्धाचार्यों ने लोक भाषा में कविता गीति लिख इसके तथ्यों का प्रचार किया। परन्तु तान्त्रिक मार्ग का उदय बहुत पहले हो चुका था। मञ्जुश्रीमूलकल्प 'जम्पलचाजूड' मन्त्रयान का ही ग्रन्थ हैं। इसकी रचना [तृतीय शतक] के आसपास हुई। इसके अनन्तर श्रीगुह्यसमाजतन्त्र [संवाद्धुस्पा] का समय 5वाँ शतक आता है। यह गुह्यसमाज 'श्रीसमाज' के नाम से भी जाना जाता है। पुष्पिका में यह 'तन्त्रराज' कहा गया है। तान्त्रिक साधना के इतिहास में इस ग्रन्थ का सर्वाधिक महत्व है। इस ग्रन्थ के ऊपर टीका तथा भाष्यों

का विशाल साहित्य तिब्बती तंजूर में सुरक्षित है। जिसमें आचार्य नागार्जुन [7 शतक], कृष्णाचार्य, शान्तिदेव, की टीकायें प्रसिद्ध आचार्यों की कृतियाँ है। इसके 18 पटलों में तन्त्रशास्त्र के सिद्धान्तों का विवेचन है। वज्रयान का प्रचार भारत के बाहर विशेष रूप से तिब्बत में हुआ जिसका प्रमाण 'श्रीचक्रसंवरतन्त्र' है।

महासुख को प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है 'गुरू' का उपदेश। तन्त्र साधनमार्ग है। अतः साधक को किसी योग्य गुरू की शिक्षा नितान्त आवश्यक है। परन्तु गुरु का स्वरुप क्या है? जानना अत्यन्त आवश्यक है। सहजिया कहते हैं कि गुरू युगनद्धरूप है अर्थात् मिथुनाकार है। वह शुन्यता और करूणा की युगल मूर्ति है। उपाय तथा प्रज्ञा का समरस विग्रह है। शून्यता सर्वश्रेष्ठ ज्ञान का वाचक है, करूणा का अर्थ जीवों के उद्धार करने के लिये महती दया है। गुरू को शुन्यता और करूणा की मिश्रित मूर्ति बतलाने का अभिप्राय यह है कि वह परम ज्ञानी होता है परन्तु साथ ही साथ जगत् के नाना प्रपञ्च मे आर्त प्राणियों के उद्धार के लिये उसके हृदय में महती दया विद्यमान रहती है। वज्रयान में प्रज्ञा और उपाय के एकीकरण के उपर जोर दिया गया है ।क्यों कि प्रज्ञा और उपाय का सामरस्य [परस्पर मिलन] ही निवार्ण है। बुद्धत्व की प्राप्ति के लिये केवल प्रज्ञा से काम नहीं चलता और न उपाय से ही काम चलता है। उसके लिये दोनों का संयोग नितान्त आवश्यक है। इन्हीं दोनों की मिलित मूर्ति तिब्बति गुरुयोग होने से गुरू को 'मिथुनाकार' बतलाया गया है। वज्रयानी सिद्धों के मत में मौन मुद्रा ही 'गुरू' का उपदेश है। शब्द के द्वारा सहज तत्व का परिचय नहीं दिया जा सकता। क्योंकि मन और वाणी के गोचर पदार्थ विकल्प के अर्न्तगत है। निर्विकल्पक तत्व शब्दातीत है। इसी को महायानी ग्रन्थों में अनक्षर तत्व कहा गया है। सच्चागुरू वह है जो आनन्द या रति के प्रभाव से शिष्य के हृदय में महासुख का विस्तार करे। गुरू का काम हृदय के अन्धकार को दूर कर प्रकाश तथा आनन्द का उल्लास करना है।

तन्त्र शास्त्र में इसीलिए उपयुक्त गुरू की खोज के लिए आग्रह है। गुरू शिष्य की योग्यता को पहिचान कर ही उसे तत्व का उपदेश देता था। साधक को यम, नियम आदि का विधान अवश्य करना चाहिए। सत्य, अहिंसा, आदि सार्व भौमिक नियमों का विधान परम आवश्यक है। वज्रयानी ग्रन्थों में गुरू के द्वारा निहित 'बोधिचित्ताभिषेक' का विशेष वर्णन किया गया है। गुरू की आराधना करना शिष्य का परम कर्त्तव्य है तथा गुरु का भी धर्म है कि वह शिष्य के चित्त को प्रवंच से दूर हटाकर सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति के लिये उपयुक्त बनावे। शिष्य को तान्त्रिक साधना के लिये नवायौवनसम्पन्ना युवती को अपनी संगिनी बनाना पढता है। इसी का नाम तान्त्रिकभाषा में 'मुद्रा' है। इस मुद्रा से सम्पन्न हो कर शिष्य वज्राचार्य [वज्रमार्ग के गुरू] के पास जाकर दीक्षित होने के लिये प्रार्थना करता है। आचार्य उसको वज्रसत्व के मन्दिर में ले जाता है। वह स्थान गन्ध, धूप, तथा पुष्प से सजाया जाता है। इसमें फूलों की मालायें लटकती रहती है। ऊपर सफेद चँदवा टँगा रहता है। माला और मदिरा के सुगन्ध से वह स्थान सुवासित रहता है। ऐसे मन्दिर में वज्राचार्य मुद्रा के साथ शिष्य का तान्त्रिक विधान के अनुसार अभिषेक करता है तथा नियम पालन करने के लिये प्रतिज्ञा करवाता है, जो इस प्रकार है:-

नहि प्राणिवधः कार्यः, त्रिरत्नं मा परित्यज।
आचार्यस्ते न संत्याज्यः, संवरो दुरति क्रमः।।

अर्थात= प्राणि का वध कभी नहीं करना, तीनो रत्नों [बौद्ध, धर्म, तथा संघ] को मत छोडना, आचार्यका परित्याग कभी न करना, यह नियम बहुत ही कठिन है। इस अभिषेक का नाम 'बोधिचित्त' अभिषेक है। इसके प्राप्त करने पर साधक का द्वितीय जन्म होता है। और उसे बुद्ध-पुत्र की पदवी प्राप्त होती है। अबतक का जन्म सांसारिक कार्य में व्यतीत हुआ।

अब गुरू की कृपा से उसे आध्यात्मिक जन्म प्राप्त होता है। गुरू स्वयं बुद्ध रूप है, अतः शिष्य का बुद्धपुत्र कहलाना उचित है। इस अभिषेक का रहस्य यह है कि शिष्य का चित्त निर्वाण की प्राप्ति के लिये सन्मार्ग पर

लग जाता है और वह आध्यात्मिक मार्ग का पथिक बन मंगल साधन में क्रियाशील होता है। तन्त्रों में साधक की योग्यता [अधिकार] पर बडा आग्रह दिखता है। शिष्य को 'पुण्यसंभार' का अर्जन करना नितान्त आवश्यक है जिसके निमित्त बुद्ध की बन्दना, पापदेशना, पुण्यानुमोदन, समय ग्रहण की व्यवस्था की गई है। यम-नियमों का सम्यक् अनुष्ठान कथमपि वर्जनीय नहीं है। अभिषेक के समय वज्राचार्य का उपदेशः

प्राणिनश्च न तो घात्या, अदत्तं नैव चाहरेत्।
मा चरेत् काम मिथा वा, मृषा नैव हिभाषयेत्।।

अर्थात्= प्राणिहिंसा, अदत्ताहरण, कामाचार, तथा मिथ्या भाषण कभी नहीं करना चाहिए। अद्वैत, तन्त्रमार्ग पर चलना तो नितान्त दुरुह व्यापार है। सारांश यह है कि मन्त्रमार्ग की साधना उच्चकोटि की साधना है । थोडी भी नैतिक शिथिलता घातक सिद्ध होगी। महासुख की उपलब्धि के स्थान तथा उपाय का वर्णन वज्रयानी ग्रन्थों में विस्तार के साथ मिलता है। सिद्धों का कहना है कि 'उष्णीष कमल' में महासुख की अभिव्यक्ति होती है। तन्त्रशास्त्र और हठ योग के ग्रन्थों में इस कमल को 'सहस्रदल' [हजारपत्तोंवाला] कहा गया है। वज्र गुरू का आसन इसी कमल की कर्णिका के मध्य में है। इस स्थान की प्राप्ति मध्यम मार्ग के अवलम्बन करने से ही हो सकती है। जीव सांसारिक दशा में दक्षिण और वाम मार्ग में इतना भ्रमण करता है कि उसे मध्यम मार्ग में जाने के लिए तनिक भी सामर्थ्य नहीं होती। यह मार्ग गुरू की कृपा से ही प्राप्य है। सहजिया लोग वाम शक्ति को 'ललना' और दक्षिण शक्ति को 'रसना' कहते हैं। तान्त्रिक भाषा में ललना, चन्द्र तथा प्रज्ञा वामशक्ति के द्योतक होने से समानार्थक है। रसना, सूर्य और उपाय दक्षिण शक्ति के बोधक होने से पर्यायवाची है। इन दोनो के बीच में चलने वाली शक्ति का परिभाषिकनाम है 'अवधूती'। अवधूति शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है :

अवहेलया अनाभोगेन क्लेशादि पापान् धुनेति।

अर्थात् वह शक्ति जो अनायास ही क्लेशादि पापों को दूर कर देती है। अवधूतीमार्ग ही अद्वयमार्ग, शून्यपथ, आनन्दस्थान आदि शब्दों से अभिहित किया जाता है। ललना और रसना इसी अवधूती के ही अविशुद्ध रूप है। जब ये शक्तियाँ विशुद्ध होकर एकाकार हो जाती है तो इन्हें 'अवधूती' कहते हैं। तब चन्द्र का चन्द्रत्व नहीं रहता और न सूर्य का सूर्यत्व रहता है। क्योंकि इन दोनों के आलिङ्गन से ही अवधूती का उदय होता है। वज्रजाप के द्वारा ललना और रसना के शोधन करने से तात्पर्य, नाडी की शुद्धि से है। शोधन होने पर दोनों नाडियाँ मिलकर एकरस या एकाकार हो जाती है। इसी निःस्वभावका नैरात्म्य अवस्था को ही शून्यावस्था कहते हैं। जो इस शून्यमय अद्वैत भाव में अधिष्ठान कर आत्मप्रकाश करता है वही सच्चा गुरू है। महासुख कमल में जाने के लिये यथार्थ समारस्य प्राप्त करने के लिये मध्यपथ का आलम्बन करना तथा द्वन्द का मिलन करना ही होगा। दो को बिना एक किये हुये सृष्टि और संहार में अतीत निरंजन पद की प्राप्ति असम्भव है। इसलिये मिलन ही अद्वय शून्यावस्था तथा परमानन्द लाभ का एक मात्र उपाय है, श्रीसमाजतन्त्र का कथन है कि दुस्कर नियमों के करने से शरीर केवल दुःख पाकर सुखता है, चित्त दुःख के समुद्र में गिर पडता है और विक्षेप होने से सिद्धि नहीं मिलती।

दुस्करैर्निममैस्तीव्रैः, मूर्ति शुष्यतिदुःखिता।
दुःखाब्धौ क्षिण्यते चित्तं, विक्षेपात् सिद्धिरन्मथा।।

योगतन्त्रानुसार सुखपूर्वक बोधि (ज्ञान) की प्राप्ति के लिये सदा उद्यत रहे।

पञ्चकामान् परित्यज्य तपोभिर्न च पीडयेत ।
सुखेन साधयेद् बोधियोगतन्त्रानुसारतः।।

वज्रयान का सिद्धान्त है कि देहरूपी वृक्ष के चित्तरूपी अङ्कुर को विशुद्ध विषय-रस के द्वारा सिक्तकरने पर यह वृक्ष कल्पवृक्ष बन जाता है और आकाश के समान निरञ्जन फल फलता है तथा महासुख की तभी प्राप्ति

होती है :

तनुतरचित्ताङ्कुरको विषमयरसैर्यदि न सिच्यते शुद्धैः।
गगन व्यापी फलदः कल्पतरूत्वं कथं लभते।।

राग से ही बन्धन होता है, मुक्तिभी राग से उत्पन्न होती है, मुक्ति का सहज साधन महाराग या अनन्यराग [वैराग्य] नहीं।

हेवज्रतन्त्र आदि अनेक तन्त्रों की उक्ति स्पष्ट है:- **"रागेन बध्यतेलोको रागेनैव विमुच्यते"।** अतः अनङ्गवज्र ने चित्त को ही संसार और निवार्ण दोनो बतलाया है। जिस समय चित्त बहल संकल्प रूपी अन्धकार से अभिभूत रहता है, बिजुली के समान चञ्चल होता है और राग, द्वेष आदि मलों से लिप्त रहता है, तब वही संसार रूप है।

अनल्प-सङ्कल्प-तमोऽभिभूतं, प्रभञ्जनोन्मत्त तडिच्चलञ्च।
रागादि दुर्वार मलावलिप्तं, चित्तं विसंसार मुवाच वज्री।।

वही चित्त जब प्रकाश मान होकर कल्पना से विमुक्त होता है, रागादिमलों के लेप से विरहित होता है, ग्राह्य ग्राहक भाव की दशा अतीत कर जाता है तब वही चित्त निर्वाण कहलाता है। वैराग्य को दमन करने वाले पुरुष को 'वीर' कहते हैं। तन्त्रमें शक्ति के तीन भेद होते है:- अपरा, परापरा, तथा परा किये गये है। अवधूती अवस्था में वायुका संचार तथा निर्गम होता है, इसी का नाम संसार है। अन्तिम क्षण में रागाग्नि आप से आप शान्त हो जाती है जिसका नाम निवार्ण या आग का बुझ जाना रागाग्नि के निवृत्त होने से जिस आनन्द का प्रकाश होता है उसे विरमानन्द कहते है। उस समय चन्द्र स्वभावस्थित होता है, मन स्थिर होता है तथा वायु की गति स्तम्भित होती है। जिसके हृदय में विरमानन्द का प्रकाश उत्पन्न हो गया है, वही यथार्थ में योगीन्द्र, योगीराट् है तथा सहजिया भाषा मे वही 'वज्रधर' पदवाच्य सद्गुरू कहलाता है।

महामुद्रा का साक्षात्कार ही सिद्धि गिना जाता है। शून्यता तथा करूणा के अभेद ज्ञान को ही 'महामुद्रा' कहते हैं। जिस ने इस अभेद ज्ञान को प्राप्त कर लिया है, उससे अज्ञात कोई भी पदार्थ नहीं रहता। उसके लिए समग्र विश्व के पदार्थ अपने विशुद्धरुपको प्रकट कर देते हैं। 'धर्मकरण्डक', 'बुद्धरत्नकरण्डक' तथा जिनरत्नः- इसी महामुद्रा के पर्याय हैं। तन्त्रशास्त्र में शिव और शक्ति का जो तात्पर्य तथा स्थान है वही रहस्य तथा स्थान वज्रयान में शून्यता तथा करुणा अथवा वज्र और कमल का है। वज्र कमल के संयोग से साधक ने बोधिचित्त को वज्रमार्ग में अच्युत रखने की योग्यता प्राप्त करली है, अथवा शिव-शक्ति के मिलन से ब्रह्मानाड़ी में विन्दु को चालित कर स्थिर तथा दृढ करने की सामर्थ सिद्ध कर ली है, वही महायोगी है।

दृढं सारमसौ शीर्यमच्छेध्यभेध्य लक्षणम्।
अदाहि अविनाशि च शून्यता वज्रमुच्यत। [*वज्र शेखर पृ 23*]

'वज्र' शून्यता का ही भौतिक प्रतीक है क्यों कि दोनो ही दृढ, अखण्डनीय, अच्छेद्य, अभेद्य तथा अविनाशी है। वज्रयान का अर्थ सब बुद्धों का ज्ञानः-

सर्वतथागतं ज्ञानं वज्रयानमितिस्मृतम्।
भावभावौं न तौ तत्वं, भवेत् ताभ्यां विवर्जितम्।
न देशत्वमतो युक्तं, सर्वज्ञो न भवेत्तदा।।[*ज्ञा सि 12/4*]

इस मत में परमार्थ सर्वव्यापक, अविकारी, तत्वभावना सर्वज्ञमाना जाता है। आकाश के समान अप्रतिष्ठित, व्यापक तथा लक्षण वर्जित जो तत्व है, वही 'वज्रज्ञान' है। यह न भावरुप है, न अभावरुप, न भावाभावरुप, और न तदुभयवर्जित है ।

शून्यता ही 'प्रज्ञा' है तथा अशेष प्राणियों पर अनुकम्पा कृपा ही 'उपाय' है। प्रज्ञोपाय के मिलन का अर्थ

है प्रज्ञा तथा करुणा का परस्पर योग। इसकी उपलब्धि मे ही परमार्थ मिलता है। तान्त्रिक ग्रन्थों में धर्मकाय को वैरोचन, वज्रसत्व या आदि बुद्ध कहा है।

गगनोद्भवः स्वयम्भूः प्रज्ञाज्ञाननलोमहान।
वैरोचनो महादीप्ति र्ज्ञानज्योति विरोचनः।।
जगत्प्रदीपो ज्ञानोल्को महातेजः प्रभास्वरः।
विद्याराजोग्रमन्त्रेशो मबराजो। [*मेकोद्देश टीका पृः 40*]

वज्रयान के साहित्य एवं आचार्यो कि एक विशाल परम्परा है। इस सम्प्रदाय के आचार्यों ने केवल संस्कृत में ही अपने सिद्धान्त ग्रन्थों का प्रणयन नहीं किया परन्तु जन साधरण के लिए उन्होंने उस समयकी लोक भाषा में भी ग्रन्थों की रचना की। वज्रयान का सम्बन्ध मगध तथा नालन्दा से बहुत ही अधिक है। श्रीपर्वत पर इसका उदय भले ही हुआ हो, परन्तु इसका अभ्युदय मगध के नालन्दा तथा ओदन्तीपुर विहारों से नितरां सम्बद्ध है। वज्रयान के साथ 84 सिद्धों का नाम सर्वथा सम्बद्ध रहेगा। इन 84 सिद्धों का पर्याप्त परिचय हमें तिब्बती ग्रन्थों से चलता है। इन सिद्धों में पुरुषों के अतिरिक्त स्त्रियों का भी स्थान था। यह परम्परा किसी एक शताब्दी का नहीं है। इस का समय नवम शताब्दी से प्रारम्भ हो कर 12 वी शताब्दी के मध्य भाग तक जाता है। इन सिद्धों का प्रभाव जादातर बंगला, मैथली, मगही, वर्तमान हिन्दूधर्म तथा हिन्दी आदि भाषाओं में गहरा सम्बन्ध परिलक्षित होता है। कबीर की बानियों में सिद्धों की परम्परा हमें दिख पडती है। नाथपन्थी निर्गुनिया सन्तोंकी कवितायें इसी परम्परा के अर्न्तभुक्त हैं। बंगालका 'सहजिया' सम्प्रदाय ही 'वज्रयान' का ज्वलन्त साक्षी है।

जब हम तन्त्र कि चर्चा करते हैं तो उन तांन्त्रिक सिद्ध महान आचार्यों को अनदेखा नहीं कर सकते है। परन्तु विस्तार भय के कारण उन पर कुछ कहना सम्भव नहीं है फिर भी कुछ एक आचार्यों कि चर्चा यहाँ हम अवश्य करेगें ।इन्द्रभूति वज्रयानी साहित्य में इन्द्रभूति और उनकी भगिनी भगवती लक्ष्मी या लक्ष्मीकरा देवी का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। ये उड्डियान के राजा तथा आचार्य पद्मसंभव के पिता थे। ये वही पद्मसंभव है जिन्होंने आचार्य शान्त रक्षित के साथ तिब्बतमें बौद्धधर्म का विपुल प्रचार-प्रसार किया तथा 749ईः में 'समये' अचिन्त्य नामक प्रसिद्ध विहार की स्थापना की। इनके 23 ग्रन्थों का अनुवाद तञ्जूर में मिलता है।इनके दो ग्रन्थ संस्कृत में उपलब्ध होते है। (1) कुरुकुल्ला साधन साधनमाला पृः 353 तथा ज्ञानसिद्धि । इस ग्रन्थ में छोटे बडे 20 परिच्छेद है जिसमें तत्व, गुरु, शिष्य, अभिषेक, साधना आदि विषयों का विस्तृत वर्णन है। इस सिद्ध परम्परा मे अतिरिक्त भी आचार्य हुए जिन में आचार्य अद्वयवज्र विशेष प्रसिद्ध है। इनका समय 12वीं शताब्दी के आसपास है। इन्हों ने वज्रयान के तथ्यों के प्रतिपादन के लिए 21 ग्रन्थ लिखे है। जो तान्त्रिक तत्वों के ज्ञान के लिए विशेष गौरव रखते है।

वज्रयान के उदय के कुछ समय बाद एक नवीन बौद्ध तान्त्रिक सम्प्रदाय का जन्म हुआ जिसको 'कालचक्रयान' के नाम से जाना जाता है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आचार्य अभिनवगुप्त ने अपने तन्त्रालोक में कालचक्र का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है । उन्होंने इस सिद्धान्त को शैवतान्त्रिक तथ्यों के अर्न्तगत ही सम्मिलित किया है। परन्तु ये सिद्धान्त मुख्यतया वे ही है जिनको आधार मानकर इस बौद्धतान्त्रिक सम्प्रदाय ने अपने नवीन यान कालचक्रयान का प्रवर्तन किया। सिद्धाचार्यों की वाणियों के शोध से हम इस परिणाम पर पहूँचते है कि ये तथ्य सिद्धों को अवगत थे। 'मेकोद्देश टीका' नामक ग्रन्थ में कालचक्र के दार्शनिक सिद्धान्त एवं व्यवहारिक साधना पद्धति का विशिष्ट वर्णन है। इसके अतिरिक्त 'विमलप्रभा' इस कालचक्रयान का विशिष्ट ग्रन्थ प्रतीत होता है। इस ग्रन्थ के प्रणेता 'आचार्य नडपाद' या [नरोपा] है। ये विशिष्ट तान्त्रिक आचार्य हैं। इस ग्रन्थ में आचार्य नागार्जुन, आर्यदेव, तथा आचार्य चन्द्रगोमी के तान्त्रिक पद्यों का उद्धरण है साथ ही प्रसिद्ध सिद्धाचार्य सरहपाद के दोहा उधृत किये गये हैं।

कालचक्रयान का मुख्य सिद्धान्त यह है कि बाहर का समग्र ब्रह्माण्ड इस मानव-शरीर के भीतर है। यही वेदान्त का मुख्य सिद्धान्त है। बाह्य जगत के सूर्य, चन्द्र, आकाश, पाताल, भूमि, समस्तभुवन, विन्ध्य हिमालय आदिपर्वत, गंगा-यमुना-सरस्वती आदि नदियाँ जितने विशाल तथा सुक्ष्म प्रपञ्च हैं वे सब इस देह में विद्यमान है। शरीर के द्वारा ही सिद्धि प्राप्त होती है, साधना का मुख्य साधन शरीर है अतः कायशुद्धि होने पर ही प्राण शुद्धि तथा चित्तशुद्धि होती है। काय, प्राण, तथा चित्त का घनिष्ट सम्बन्ध है तीनों की शुद्धि बिना परमार्थ की प्राप्ति असम्भवसा है। काय में ही कालचक्र का परिवर्तन होता है।

यह विश्व शक्ति तथा शक्तिमान के परस्पर संयोग का फल है। परम तत्व को 'आदिबुद्ध' कहते हैं ।जिनका आदि है और न अन्त है। अनन्त ज्ञान से सम्पन्न होने से, अविपरीत रुप से समग्र धर्मो को जानने के कारण, विश्वके आदि में विद्यमान होने से आदिबुद्ध है। 'आदि' से तात्पर्य अत्पादव्ययरहित से है। वे करुणा तथा शून्यता की मूर्ति है। अथार्त् परम तत्व के दो प्रकार है:=

1 समस्त धर्मो के निःस्वभाव होने का ज्ञान [समस्तशून्यता] यह उत्कृष्ट 'प्रज्ञा' है।

2 अनन्त दया [करुणा] अथार्त दुःख के समुद्र में डूबने वाले प्राणियों को उद्धार करने की असीम अनुकम्पा। प्रज्ञा तथा करुणा की सम्मिलित मूर्ति कालचक्रयान में 'आदिबुद्ध' है। यह उनकी महती विशिष्टता है कि वे सर्वज्ञ होते हुए परम कारुणिक हैं। अतः 'बुद्ध' को हम 'भगवान' कहते है अर्थात् जगत उद्धार की सामर्थ रखने वाला। अतः कालचक्रयान में 'आदिबुद्ध' की कल्पना करुणा और शून्यता की एकता के रुप में की गई है। उन्हीं की संज्ञा 'काल' है। उन की शक्ति संवृत्तिरुपणी है अर्थात् जगत का यह व्यावहारिक रुप [संवृति] उन्हीं की विश्वमाता [युमना:च्छा] शक्ति है। 'चक्र' संतत परिवर्तनशील विश्व का प्रतिनिधि है। शक्ति से संचालित रुप 'कालचक्र' है। यह अद्वय [दो होकर भी एक] है तथा कभी विनाश नहीं होने वाला अक्षर है।

अनादिनिधनो बुद्ध आदिबुद्धो निरन्वयः।
करुणाशून्यता मूर्तिः कालः संवृतिरुतिपिणी।
शून्यता चक्रमित्युक्तं कालचक्रोऽद्वयोऽक्षरः। [*सेकोद्देशटीका*]

आदि बुद्ध के चार काय होते है 1 सहजकाय, 2 धर्मकाय, 3 सम्भोगकाय, तथा 4 निर्माण काय। वैदिक दर्शन में जीव में जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तथा तुरीय ये चार अवस्थायें मानी जाती है। इन चारों अवस्थाओं में विद्यमान रहने वाला चैतन्य भिन्न भिन्न नामों से पुकारा जाता है। जाग्रत अवस्था के साक्षी चैतन्य को (जीव) 'विश्व' कहते है, स्वप्न के साक्षी को 'तैजस' तथा सुषुप्ति के साक्षी को 'प्राज्ञ' कहते है। इसके अतिरिक्त तुरीय दशा के साक्षी 'आत्मा' है। इसी प्रकार कालचक्रयान में इन अवस्थाओं से सम्बद्ध चार कायों की कल्पना मानी जाती है। आदि बुद्ध का सहज काय ही परमार्थतः सत्य है। यह शून्यता के ज्ञान हो ने से विसुद्ध है। तुरीयदशा के क्षय न होने से अक्षर तथा महासुखरुप है । करुणा का उदय इसी काय में है अतः वह ज्ञानवज्र कहा गया है। यही विशुद्धयोग है। धर्मकाय में बिना निमित्त ही ज्ञान का उदय होता है। यह मैत्री रुप है। निर्विकल्पक चित्त की भूमि होने से यह 'चित्तवज्र' तथा धर्मात्मक योग कहलाता है। सम्भोगकाय स्वप्न की दशा का सूचक है। इस में अक्षय अनाहत ध्वनि का उदय होता है। सब प्राणियों के नादरुप होने से मन्त्रमुदिता रुप है। इसे वागवज्र तथा मन्त्र योग कहते है। इसी काय के द्वारा आदिबुद्ध धर्म तत्वों की शिक्षा प्रदान करते है। निर्माण काय का सम्बन्ध जाग्रत् दशा से है। नाना निर्माण काय को धारण कर क्लेश का नाश करते हैं। यही कायवज्र तथा संस्थान योग कहलाता है। 'कालचक्र' शब्द समष्टि तथा व्यष्टि रुपसे उसी परमतत्वका द्योतक है। 'का' 'कारण' का प्रतीक है। अथार्त् परम तत्व 'कारण' रहित है। कारण बोधिचित्त काय, एक ही पदार्थ है। 'ल' 'लय' (नाश) का द्योतक है। लय किसका? प्राणका। 'च' 'चलचित्त' का वाचक है। जगत के व्यापार के साथ सम्बद्ध रहने से 'चित्त' इन्हीं विषयें में सदा भ्रमण किया करता है। इसलिए चित्त चञ्चल रहता है। 'क्र' 'क्रम' बन्धन

का सूचक है। अर्थात् तुरीयावस्था में काय, प्राण, तथा चित्त का बन्धन क्रमशः सम्पन्न होता है। प्राण तथा चित्त का परस्पर योग नितान्त घनिष्ठ रहता है। इसलिए प्रथमतः कायविन्दु का निरोध करना आवश्यक है। यह ललाट में सम्पन्न होता है। अतः 'का' निर्माणकाय का सूचक है। कण्ठ में वाग् विन्दु के निरोध होने मे प्राण का लय होता है। विना प्राण के लय किये चञ्चल चित्त का बन्धन नहीं हो सकता। इन तीनों के बन्धन तथा लय का अनुष्ठान तुर्गय दशा में किया जाता है। अतः 'कालचक्र' [जिसमें ये चारों अक्षर क्रमशः सन्निविष्ट है] उसी परम सत्यभूत, अक्षर, आदि बुद्ध को द्योतित करता है

काकारात् कारणे शान्ते लकाराल्लयोऽत्रवै।

चकाराच्चलचित्तस्य क्रकारात् क्रमबन्धनैः। [*नरोपाद मेकोद्योश टीका*]

'कालचक्र' में दो शब्द है काल और चक्र। काल और चक्र का समन्वय ही परम तत्व का द्योतक है। काल, उपाय तथा करुणा एक ही तत्व के पर्याय हैं जिसे पुरुष या शिव के नाम से ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लेख करते हैं। चक्र, प्रज्ञा, शून्यता एक तत्व के पर्याय हैं। वही तत्व जिसे प्रकृति या शक्ति की संज्ञा ब्राह्मण ग्रन्थों में है। परमतत्व ज्ञाता तथा ज्ञेय प्रज्ञा तथा उपाय का समन्वय होने के कारण 'कालचक्र' की संज्ञा से पुकारा जाता है। युगलरुप, परमतत्व, शिवशक्ति की एकता का बोधक 'कालचक्र' है।

स एव कालचक्रो भगवान् प्रज्ञोपायात्मको ज्ञान ज्ञेय सम्बन्धेनोक्तो

यथाक्षर सुखज्ञानं सर्वावरणक्षयहेतुभूतं 'काल' इत्युक्तम [*संकोद्देशटीका*]

भिन्न-भिन्न वज्र तथा योगका निर्देश

1	सहजकाय	करुणा	ज्ञानवज्र	विशुद्धयोग	तुर्गय
2	धर्मकाय	मैत्री	चित्तवज्र	धर्मात्मकयोग	सुषुप्ति
3	संभोगकाय	मुदिता	वाग्वज्र	मन्त्रयोग	स्वप्न
4	निर्माणकाय	उपेक्षा	कायवज्र	संस्थानयोग	जाग्रत

तन्त्र : परमपावन दलाईलामा भिक्षु शासनधरसमुद्र :-

तन्त्रपिटक चार वर्गों में विभक्त होता है। चारों वर्ग क्रमशः उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होते है। उनका और प्रत्यङ्गों में विभाजन किया जायगा तो अनन्त प्रभेद हो जायेगें । किन्तु सबका मौलिक अभिधेय यहाँ स्थूलरुप से प्रतिपादन किया जा रहा है । पहले कहा गया है कि हमारी समस्त दुःखानुभूतियाँ अशुभकर्मों और क्लेश के वश से प्रादुर्भूत होती है । चित्त का संयम न होने से कर्मो का संचय होता है। अतः चित्त को संयम में लाना मोक्ष केलिये अत्यावश्यक है। दुर्दान्त चित्त को दो प्रकार से नियन्त्रित किया जा सकता है। एक उपाय यह है, कि चित्त में खराब कल्पनायें उत्पन्न न होने दी जायँ और उन्हें रोकने के लिये मार्ग की भावना की जाय। दूसरा उपाय यह है, कि पहले उपाय के साथ साथ शरीर को मर्माहत करने वाले विशिष्ट उपाय और प्रज्ञाके युगल का आश्रयण किया जाय। पहले उपाय से दूसरे उपाय में विशेषता यह होती है, कि इसके द्वारा शीघ्रतया चित्त को नियन्त्रित किया जा सकता है, क्यों कि चित्त शरीर पर आधृत होता है। मुख्यतः रक्तवहा, शुक्रवहा और वायुवहा नाड़ियों को मर्माहत किया जाता है। यह एक सामान्यनियम है कि वायुद्वारा चित्त विषयों में प्रक्षिप्त हुआ करता है। उपर्युक्तनाड़ियों के मर्माहत से वायु का यथेच्छ संञ्चालन किया जाता है, फलतः अस्थानों में वायु का गमन रुक जाता है। उसके कारण चित्त भी अस्थानों में प्रवृत्त नहीं होगा, क्यों कि उसके संञ्चालन (वायु) का ही दमन कर दिया गया है। इसलिये खराब कल्पनायें समाप्त हो जाती हैं। इस प्रकार का उपाय केवल आभ्यन्तरिक नाड़ी एवं वायु के संशोधन से ही सम्पन्न किया जा सकता है, न कि बाह्य उपचारों से। इसलिये

चित्त को आलम्बन में स्थिर रखनेवाली शक्ति पैदा करनी होगी। इत्यादि अनेक प्रयोजनों की सिद्धि के लिये तन्त्र में देवकाय की भावना उपदिष्ट है। देवकाये भी अनेक प्रकार के होते हैं, जो अत्यन्त प्रामाणिक होते है। ये सब देवकाय स्वच्छन्द कल्पना द्वारा निर्मित नहीं हैं, अपितु संशोध्यस्कन्ध, आयतन, धातुओं के संशोधन विशिष्ट क्रमों द्वारा संशोधित अनास्रव देवकाय होते है। विनेय जनों के धात, आशय और इन्द्रिय के भेद से इनके विविध रुप होते है जैसेः शान्त, रुद्र, एकमुख, अनेकमुख, द्विबाहु, अनेकबाहु, अल्पपरिवार, बहुपरिवार। यद्यपि ये सब अधिमुक्ति या तर्क द्वारा भी सिद्ध किये जा सकते है। यदि कोई वास्तविक रुप से मार्गाभ्यास करना चाहे तो उसका अनेक हेतुओं से निश्चय कराया जा सकता है। [*बौद्धधर्म का परिचय*]

भगवान् ने कहा हे शारिपुत्र! सुनो! तथागत का संधभाष्य दुर्वेध्य है। नाना निरुक्ति और निदर्शनो से और विविध उपाय कौशल्यों से मैं ने धर्म का प्रकाशन किया है। सद्धर्म तर्क गोचर नहीं है। तथागत सत्वों को ज्ञान का प्रतिबोध कराने के लिए ही उत्पन्न होते हैं। यह महा महा कृत्य एक ही यान पर अधिष्ठित हो कर बुद्ध कहते हैं। यह यान है 'बुद्धयान'। इसमें अन्य कोई दूसरा या तीसरा यान नहीं है। नाना अधिमुक्तियों के लिए और नाना धात्वाशय के सत्वों के लिए विविध उपाय कौशल्य है किन्तु उन सभी उपाय कौशल्यों का पर्यवसान बुद्धयान में ही है। यह बुद्धयान ही सर्वज्ञता, पर्यवसान, तथागत ज्ञान दर्शन की प्राप्ति, सत्यका संदर्शन अवतरण और प्रतिबोधन करने वाला है। अतीत, अनागत और वर्तमान तीनों कालों में तथागतों ने बुद्धयान ही स्वीकृत किया है। हे शारिपुत्र! जब सम्यक् संबुद्ध क्लेश, दृष्टि, संक्षोभ और अकुशलमूल के बाहुल्य से युक्त सत्वों के बीच पैदा होते हैं, तब बुद्धयान का ही तीन यानों के रुप में निर्देश करते हैं। इसलिए हे शारिपुत्र! जो श्रावक, अर्हत या प्रत्येक बुद्ध इस बुद्धयान को न सुनेगें या न मानेगें, वे न तो श्रावक हैं, न अर्हत है और न प्रत्येक बुद्ध ही हैं। इसलिए हे शारिपुत्र! तुम विश्वास करो कि एक ही यान है 'बुद्धयान'।

एकंहि यानं द्वितीयं न विध्यते
तृतियं हि नैवास्ति कदाचि लोके ।
एकं हि कार्यं द्वितीयं न विध्यते
न हीनयानेन नयन्ति बुद्धाः ।।[*सद्धर्म पुण्डरीक 2/5*]

यह दूसरा उपाय कौशल्य-परिवर्त है। भगवान का यह उपदेश सुनकर शारिपुत्र ने प्रमुदित हो कर भगवान् को प्रणाम किया और कहा 'भगवन्' ! आप का यह घोष सुनकर मैं आश्चर्य चकित हूँ। हे भगवन्! मैं बार बार खिन्न होता हूँ कि मैं हीनयान में क्यों प्रविष्ट हुआ। अनागत काल में बुद्धत्व प्राप्त करके धर्मोपदेश करने का मैं ने अवसर गवाँया। किन्तु भगवन्! यह मेरा अपराध हैं, न कि आपका। यदि हम भगवान से पहले ही प्रार्थना करते तो भगवान् हमें सामुत्कर्षिकी धर्म देशना [चतुरादि सत्यदेशना] के समय ही इस अनुत्तरा सम्यक संबोधि की भी देशना देते और हम बुद्धयान में ही निर्यात होते। भगवन्! आज बुद्धयान का उपदेश सुनकर मैं कृतार्थ हुआ हूँ, "मेरा पश्चाताप मिट गया है"। भगवान् ने कहा, "हे शारिपुत्र! मैं तुमको बताता हूँ कि तुमने अतीतभवों में अनुत्तरा सम्यक्संबोधि के लिए मेरे पास ही चर्या प्रणिधान किया हैं, किन्तु तुम उसका स्मरण नहीं कर पा रहे हो और अपने को निर्वाण प्राप्त समझते हो? पूर्व के चर्या प्रणिधान ज्ञान का तुम्हें स्मरण दिलाने के लिए ही 'सद्धर्मपुण्डरीक' नाम के इस महावैपुल्य धर्म पर्याय का प्रकाशन श्रावकों के निमित्त करुँगा"। "हे शारिपुत्र! अनागत काल में तुम भी पद्मप्रभ नाम के तथागत हो कर धर्म प्रकाश करोगे। यह मेरा व्याकरण है तुम प्रसन्न हो"। भगवान् के इस व्याकरण का देवों ने अभिनन्दन किया और कहा भगवान् ने पहला धर्म चक्र प्रवर्तन वाराणासी में किया यह अनुत्तर द्वितीय धर्मचक्र प्रवर्तन भगवान ने अब किया है।

"पूर्व भगवा वाराणस्यामृषिपत्तनेमृगदावे धर्मचक्रं
प्रवर्तितमिदं पुनर्मगवाताध्या नुत्तरं द्वितीयं
धर्मचक्रं प्रवर्तितम्।"

परिशिष्ट नोट

सूर्य और चन्द्र किसमें प्रतिष्ठित है? वायु में।

सत्वों के कर्मों के सामूहिक बल से वे वायु उत्पादित होती है जो अन्तरिक्ष में चन्द्र सूर्य और तारकों का निर्माण करती है। यह सब नक्षत्र मेरु के चारों ओर भ्रमण करते हैं मानो जल के भँवर से आकृष्ट हुये हों। यहाँ से चन्द्र और सूर्य का क्या अन्तर है। चन्द्र और सूर्य मेरु के अर्ध में हैं। चन्द्र और सूर्य की गति युगन्धरके शिखर के समतल पर होती है। उनका परिणाम क्या है? चन्द्रविम्ब 50 योजन का है। सूर्य का विम्ब 51 योजन का है। *अभिधर्म कोश पृष्ट 378 का 156,157।*

आकाश यह वह असंस्कृत धर्म हैं, जो न तो दूसरों को आवरण करता हैं, न अन्य धर्मो के द्वारा आवृत होता है।

आगम सृष्टि, प्रलय, देवार्चन, सर्वसाधन, पुरश्चरण, षट्कर्मसाधन । शान्ति, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन, तथा मारण और ध्यान योग इन लक्षणों से युक्त ग्रन्थ विशेष। तन्त्र।

आचार तन्त्रशास्त्र में साधक के बाहरी आचरण की संज्ञा।

अनुत्तरपूजा 'बोधिचित्त' के उत्पन्न करने के लिए एक प्रकार की विशिष्ट महायानी पूजा।

अकुल तंत्रशास्त्र में शिव का प्रतीक।

अवधूती 'अवहेलया अनाभोगेन क्लेशादि पापान् धुनोति' अनायास ही क्लेशादि पापों को दूर करने वाली शक्ति। सुषुम्ना मार्ग से प्रवाहित होने वाली शक्ति का तान्त्रिक नाम। जब ललना तथा रसना शिशुद्ध होकर एकाकार होती हैं, तो उन्हें 'अवधूती' कहते हैं।

आदि बुद्ध कालचक्रयान में परम तत्व का संकेत। 'आदि' का अर्थ है उत्पाद व्यय रहित अर्थात नित्य। वे प्रज्ञा तथा करूणा की सम्मिलित मूर्तिमाने जाते हैं। इनके चार काय होते हैं।

इड़ा वाम या चन्द्र नाड़ी का नाम।

उपाय प्राणियों पर अनुकम्पा या करुणा ।

काल उपाय, करुणा तथा शिवतत्व का सांकेतिक अभिधान।

कालचक्र परम तत्व का सांकेतिक अभिधान। प्रज्ञोपायरुप सम्बद्ध युगल मूर्ति का कालचक्रयानी नाम ।

कुल कण्डलिनी शक्ति ।

कुलीन कौल का पर्यायवाची शब्द। कुल या शक्ति में लीन रहने वाला साधक।

कौल जो व्यक्ति योग विद्या के सहारे कुण्डलिनी का उत्थान कर सहस्त्रार में स्थित शिव के साथ संयोग करादेता है उसे 'कौल' कहते हैं। पूर्ण अद्वैती साधक जिसे पंक और चंदन में, शत्रु तथा मित्र में, श्मशान तथा भवन में, सोना तथा तृण में, तनिक भी भेदबुद्धि नहीं रहती।

कौलाचार सब तान्त्रिक आचारों में श्रेष्ट आचार जिसमें पूर्ण अद्वैत भावना का आचरण किया जाता है।

क्रियायोग योग सिद्धिका आरम्भिक साधन जिसके अन्तर्गत तीन साधनों का समावेश होता है (क) तप (ख) स्वाध्याय मोक्षशास्त्र का अनुशीलन अथवा प्रणवपूर्वक मन्त्रों का जप, (ग) ईश्वर प्रणिधान ईश्वर की भक्ति अथवा समग्र कर्म फलों का ईश्वर को समर्पण । इसका फल होता है समाधि की सिद्धि करना तथा अविद्या आदि क्लेशों को क्षीण करना। *योगसूत्र*।

गंगा तन्त्र शास्त्र में शरीर के वाम भाग में प्रवाहित होने वाली 'इड़ा' नाड़ी का सांकेतिक नाम ।

गुरुतत्व 'सहजिया' लोगों में गुरु शून्यता तथा करुणा की युगल मूर्ति, उपाय तथा प्रज्ञा का समरस विग्रह होता है। वह केवल परमज्ञानी ही नहीं होता, प्रत्युत जीवों के उद्धार करने की महती दया भी उसमें विद्यमान रहती है। जब तक परम करुणा का उदय नहीं होता, तब तक ज्ञान से पूर्ण होने पर भी मानव गुरु बनने का अधिकारी नहीं होता।

चक्र प्रज्ञा, शून्यता तथा शक्ति का बौद्ध प्रतीक।

चाण्डाली अवधूती शक्ति का तान्त्रिक नाम।

ज्ञानसंभार 'प्रज्ञा' जिसके उदय से बुद्धत्व की सध्यः उत्पत्ति होती है।

टक्कर तन्त्र में सूर्य या दक्षिण नाड़ी का सांकेतिक नाम।

तन्त्र तन् विस्तार + ष्ट्रन। वह शास्त्र जिसके द्वारा ज्ञान का विस्तार किया जाता है। विशेषतः वह शास्त्र जो तत्व तथा मन्त्र से युक्त अनेक अर्थ का विस्तार करते हैं (तनन) तथा ज्ञान के द्वारा साधकों का त्राण करते हैं (त्राण)।

दिव्याभाव जब साधक द्वैतभावको दूरकर उपास्य देवता के साथ अपना अद्वैत भाव स्थिर करता है। देवता की सत्ता में अपनी सत्ता खो कर अद्वैतानन्द का आस्वादन करता है तब उस में दिव्यभाव का उदय माना जाता है।

पशुभाव अविद्या के आवरण के कारण जिन जीवों में अद्वैत ज्ञानका उदय लेशमात्र भी नहीं होता और जो संसार के प्रपंच

से सर्वथा बद्ध है उनकी मानस दशा। पाशनाद्यपशवः।

पिंगला दक्षिण या सूर्य नाड़ी का तान्त्रिक नाम।

भाव तन्त्रशास्त्र का पारिभाषिक शब्द। साधक की मानसिक दशा।

मध्यममार्ग सुषुम्ना नाड़ी का अपर नाम।

महासुख सदा एक रस रहने वाला, बिना किसी कारण के ही स्वतः उदित, सदैव वर्तमान आनन्द। निर्वाण का ही वज्रयानी संकेत। यह उस अवस्था का आनन्द होता है, जिसमें न तो संसार रहता है, न निर्वाण, न अपनापन रहता है और न परायापन। चित्त का निरपेक्ष स्वतः करण हीन आनन्द।

मद्य ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रदल कमल से चूने या टपकने वाला अमृत।

मद्यप उच्चसाधना के बलपर कुण्डलिनी तथा शिवके संयोग होने पर सहस्रार से चूने वाले अमृत का पान करने वाला व्यक्ति।

मत्स्य गंगा और यमुना के प्रवाह में बहने वाले श्वास तथा प्रश्वास का सांकेतिक तान्त्रिक अभिधान।

मत्स्यभक्षक प्राणायाम के द्वारा प्राणवायु को कुम्भक की पद्धति से सुषुम्ना मार्ग में प्रवेश कराने वाला योगी।

मध्यमपथ सुषुम्ना नाड़ी का सांकेतिक नाम।

मांसाहारी पाप-पुण्यरुपी पशुओं को ज्ञानरुपी खड्ग से मारने वाला और अपने चित्त को ब्रह्म में लीन करने वाला साधक मांसाहारी कहलाता है।

मुद्रा असत् संगति का मुद्रण या सर्वथा परित्याग मुद्रा कहलाता है।

मुद्रा साधन तान्त्रिक साधना के लिए नवयौवन सम्पन्ना युवति को अपनी संगिनी या शक्ति बनाना पड़ता है। इसीका तान्त्रिक संकेत है मुद्रा साधन।

मैथुन सुषुम्ना तथा प्राण के समागम का तान्त्रिक संकेत। स्त्री सहवास से उत्पन्न आनन्द से करोड़ों गुना अधिक आनन्द उत्पन्न होने से इसको मैथुन कहते हैं।

यमुना तन्त्र शास्त्र में शरीर के दक्षिण भाग में प्रवाहित होने वाली नाड़ी का सांकेतिक नाम।

युगनद्ध शिवशक्ति का परस्पर आलिङ्गन या मिलन।

रसना सहजिया मत में दक्षिण शक्ति का सांकेतिक नाम।

ललना सहजिया मत में वाम शक्ति का सांकेतिक नाम।

व बौद्धतन्त्र में सूर्य उपाय तथा शिव का द्योतक तान्त्रिक संकेत।

वज्र शून्यता का प्रतीक। दृढ, सारवान्, अच्छेद्य,अभेद्य,तथा अविनाशी होने से वज्र शून्यता का संकेत माना जाता है।

वज्रधर सच्चे तन्त्र मार्ग का उपदेशक तान्त्रिक गुरु।

विरमानन्द रागाग्नि के शान्त होने पर पूर्ण आनन्दका प्रकाश।

सहजयान वज्रयान का नामान्तर।

साधन बौद्ध तन्त्र में देवताओं के मन्त्र, यन्त्र, पूजा, पटल का वर्णन।

ह तन्त्र में चन्द्र या वाम नाड़ी का सांकेतिक नाम।

हठयोग चन्द्र तथा सूर्य का एकीकरण, इड़ा तथा पिंगला, प्राण और अपान का समीकरण सिद्ध करने वाला योग।

1 तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेनेति तन्त्रम्। *काशिका*
2 वज्रसूचि 2।1।1
3 कुलार्णवतन्त्र 1 6 10
4 एन इन्ट्रोडेक्शन टु दि बुधिष्ट एसोटरिजम डाः विनयतोष भट्टाचार्य पृष्ठ 43-44
5 भावचूडामणी तन्त्र 1
6 स्वच्छन्द तन्त्र 2
7 गुप्तसाधन तन्त्र 1
8 कुलार्णवतन्त्र 2
9 योगीनी तन्त्र 3
10 कुलार्णवतन्त्र 4

11 आगम सार 5, 6
12 विजय तन्त्र 1
13 मेरुतन्त्र 2
14 दीर्घनिकाय 32 सुत्र
15 दीर्घनिकाय पृ 196 हिन्दी अनुवाद
16 तन्त्र संग्रह श्लोक 3486,3487
17 कथावत्थु 17।10 ।81
18 कथावत्थु 23। 9
19 ज्ञानसिद्धि परिच्छेद 7
20 अद्वयवज्र पृष्ठ 57
21 महासुखप्रकाश पृष्ठ 50
22 पुरातत्त्वनिबन्धावली पृष्ठ 140
23 मालतीमाधव अङ्क 1।8, 90
24 हर्षचरित पृ 2
25 रत्नावली अङ्क 2
26 शङ्करदिग्विजय पृष्ठ 366
27 संकोद्देशटीका पृष्ठ 63
28 हेवज्रतन्त्र
29 चर्या चर्य विनिश्चय पृष्ठ 3
30 श्री गुह्य समाज तन्त्र पटल 15 पृष्ठ 94,112
31 प्रज्ञोपाय विनिश्चय सिद्धि परिच्छेद 3 पृष्ठ 11, 15
32 ज्ञानसिद्धि 17 परिच्छेद 8।19, 8।20, पृष्ठ 36,12 ।4 पृष्ठ 75
33 बौद्धगाना ओ दोहा पृष्ठ 30
34 श्री समाजतन्त्र पृष्ठ 153
35 वज्रशेखर पृष्ठ 23
36 प्रज्ञोपाय 5।16
37 दोहाकोष पृष्ठ 159
38 संकोद्देशटीका पृष्ठ 59 पृ 5 6
39 निदानसथा
40 दीर्घनिमाय
41 अभिधम्मत्थसंङ्गहो भाग I, भाग II
42 विसुद्धिमग्गो भाग I,II,III
43 अभिधर्म कोश भाग I,II
44 विरुपाक्षपञ्जाशिका म म डा गोपीनाथ कविराज
45 तन्त्रसंग्रह
46 उत्तरषट्कम् आचार्य वज्रवल्लभ द्विवेदी सम्पादन
47 श्रीतन्त्रालोक आचार्य श्री अभिनव गुप्त
48 The Introduction to Buddhist Esoterism by Binayatosh Bhattacharya.
49 The Mystic Significance of "Evam" Jha Research Institute Journal Vol II Part I by MM. Dr. G.N.Kaviraj
50 Tibetan Buddhism by Waddell
51 Buddhism of Tibet or Lamaism by Waddell
52 Indian Pandits in the land of Snow by Sarat Chandra Das

53 तिब्बत में बौद्धधर्म राहुल सांकृत्यायन

54 Studies in Lankavatar Sutra by D.T Suzuki

55 Vimalaprabhatika : Edited by Prof. Jagannath Upadhyaya

Tantricism in the Vedas

Chandogya Upanisad - 11.13.1-2
Sata Patha Brahman - 1.1.18,20,21 etc.
The use of protective amulets also seem to have been quite popular at the time of the Atharvaveda [A.V II.II.II. viii 5x6, Kausika Sutra, 19,22-27,42,22-43,I]. Thus the abhicara, strikarma, Sammanasya, Paustika and other sorecery rites of which we get references in the : Atharvaveda are quite common in the Tantras. [RV 1.154.2, RV VII 59.12, RV 1.22.20, RV 1.22.21, RV IV 40.5, RV X;184.1, RV X.184.2]
We also come across a Tantric adapation of the well-known svastivacana mantra [RG Veda, V.I.89.6]

स्वस्तिन इन्द्रो वृद्ध श्रवाः
स्वस्तिमः पुषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।।

The form in which the above Mantra is used in Tantric worship is quoted below for comparison with the vedic original.

ह्रीं हूँ स्वस्तिनः कत्यायनी अपर्णा
हूं स्वस्तिनः काली मेधामृतमयी।
हौ स्वस्तिनः प्रत्यङ्गिरादेवतादधातु।।
त्रिपुरामै विद्महे मैख्यैधीमहि तन्नोदेवी
प्रचोदयात् -- Gayatri of Bhairavi

संस्कृतः तन्त्र् [चुरा, उभ, तन्त्रयति ते, तन्त्रित] हुकूमत करना, नियन्त्रण रखना, प्रशासन करना, प्रजाः प्रजाःस्वा इव तन्त्रयित्वा शा॰ 5।5, 2 [आ॰] पालन, पोषण करना निर्वाह करना । तन्त्रम् [तन्त्र्+अच्]।। करघा, 2 धागा, 3 ताना, 4 वंशज, 5 आर्वाच्छन्नवंश परम्परा, 6 कर्मकाण्ड पद्धति, रूपरेखा, संस्कार कर्मणांवृगपद्भावस्तन्त्रम् कात्या 7 मुख्य विषय, 8 मुख्यसिद्धान्त, निमय, वाद, शास्त्र जितमर्नासिजतन्त्रविचारम् गीत 2, 9 पराधीनता, पराश्रयता जैसा कि 'स्वतन्त्र', 'परतन्त्र', 'दैवतन्त्र', दुःखम् दश, 5, 10 वैज्ञानिकक्रांति, 11 अध्याय, अनुभाग [किसी ग्रन्थादिक के] तन्त्रेः पञ्चभिरन्तेच्यकार शास्त्रम् पंच 1, 12 तन्त्र संहिता [जिसमें देवाताओं की पूजा के लिए अथवा अतिमानव शक्ति प्राप्त करने के लिए जादू टोना या मन्त्र तन्त्र का वर्णन है] 13 एक से अधिक कार्यों का कारण, 14 जादू टोना, 15 मुख्योपचार, गण्डा, तावीज, 16 दवाइ, औषधि, 17 कसम, शपथ, 18 वेशभूषा, 19 कार्य करने की सही रीति, 20 राजकीय परिजन, अनुचर वग, भृत्यवग, 21 राज्य, देश, प्रभुता, 22 सरकार, हुकूमत, प्रशासन लोकतन्त्राधिकारः॰ः 5, 23 सेना, 24 हेर जमाव, 25 घर, 26 सजावट, 27 दौलत, 28 प्रसन्नता। समः काष्ठम् = तन्तु काष्ठ वाप-वापम्। बुनाइ, 2, करघा, वापः 1,मकडी, 2,जुलाहा। तन्त्रक [तन्त्र+कन्] नईवेशभूषा [कोंगकपडा]।तन्त्रणम् [तन्त्र+ल्युट्]शान्ति बनाये रखना, अनुशासन, व्यवस्था, प्रशासन रखना। तन्त्रिः॰ स्त्री [स्त्रीः] [तन्त्र्+इ, तन्त्रि+ङीप्], 1 डोरी, रस्सी, = मनु 04।38, 2, धनुष की डोरी, 3, वीणा का तार॰ तन्त्रीमाद्रां नयनसलिलः॰ सारयित्वा कथंचित = मेघ, 86, 4, स्नायु तांत, 5, पूँछ।